इकाई 9 सामाजिक संरचना एवं स्तरीकरण

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 तात्पर्य

9.3 सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य

- 9.3.1 सरचनावाद
- 9.3.2 प्रकार्यवाद
- 9.3.3 मार्क्सवाद
- 9.3.4 वैबरीय दृष्टिकोण
- 9.3.5 वेबर तथा मार्क्स के सिद्धान्तों का एकीकरण-हैबरमास

9.4 सामाजिक स्तरीकरण

- 9.4.1 मार्क्सवादी दृष्टिकोण
- 9.4.2 वैबरीय दृष्टिकोण
- 9.4.3 प्रकार्यवादी दृष्टिकोण

9.5 सारांश

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.7 बोध प्रश्नों **Ti;** उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उन सामाजिक संरचनाओं से परिचित कराना है जिन्हें राजनीतिक संस्थाएँ अपनी गतिविधियों का आधार बनाती हैं। इस तथ्य के बावजूद कि सामाजिक संरचनाओं को समझने की विभिन्न रीतियाँ हैं, राजनीतिक गतिविधियों का अभिविन्यास सामाजिक संरचनाओं के बोध पर ही निर्भर होता है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आपः

- सामाजिक संरचनाओं और सामाजिक व्यवहारों के संबंध को समझ सकेंगे;
- सामाजिक संरचनाओं के बोध के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों को रेखांकित कर सकेंगे;
- सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक संस्थाओं के संबंधों को जान सकेंगे; तथा
- सामाजिक स्तरीकरण के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की रूपरेखा बना सकेंगे;

9.1 प्रस्तावना

सामान्य बोलचाल में हम किसी भी राजनीतिक गतिविधि की सफलता अथवा असफलता के लिए कुछ सामाजिक यथार्थों; जैसे, वर्ग, राष्ट्र, जाति, धर्म, लिंग आदि; को उत्तरदायी

मानते हैं। उदाहरण के लिए, हम कह सकते हैं कि भारत में छूआछूत के निरंतर प्रचलन के कारण अनेक सकारात्मक कार्यों के लाभ दलित वर्ग तक प्रभावी ढंग से नहीं पहुँच सके हैं; या लिंग भेद जन्य शोषण के कारण राजनीति में महिलाओं की भागीदारी बाधित हुई है। हम प्रायः कहा करते हैं कि अमुक राजनीतिक निर्णय या उनके परिणाम किन्हीं विशिष्ट सामाजिक संरचनाओं के होने या न होने के कारण हैं। हममें से अधिकतर लोग जानते हैं कि सार्वजनिक निर्णय, औपचारिक रूप से, मात्र कानून के शासन या मताधिकार पर आधारित नहीं होते। ऐसे कार्य सामाजिक शक्तियों के प्रचालन पर भी निर्भर होते हैं।

सामाजिक संरचनाएँ स्थिर नहीं होतीं। वे परिवर्तित भी होती हैं और पुनर्गठित भी। अपने सदस्यों की गतिविधियों के साथ साथ उनमें रूपान्तरण होता रहता है। यद्यपि उनमें अनेक प्रकार से परिवर्तन होते रहते हैं किन्तु राजनीतिक गतिविधि के कारण होने वाला परिवर्तन विशिष्ट होता है। उदाहरण के रूप में विचारकों ने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार भारत में निर्वाचन पद्धति के कारण जातिगत पहचान का पुनर्प्रतिपादन एवं पुनर्दृढ़ीकरण हुआ है। सामाजिक अभिकर्त्ता या कार्यकर्त्ता (समाज के सदस्य) सामाजिक संरचनाओं में अपनी स्थिति या भूमिका को भिन्न प्रकार से समझ सकते हैं।

किसी समाज में सामाजिक अभिकर्त्ताओं के संसाधनों, उनकी शक्तियों, उनके सम्मान और उनकी श्रेणियों में व्यापक रूप से परिवर्तन होता रहता है। किसी समाज के सदस्यों को उनकी भूमिकाएँ सीमांकित प्रकार्यों के साथ सौंपी जाती हैं। इन सामाजिक अभिनेताओं (सदस्यों) को मिली हुई भूमिकाएँ उनकी रुचि के अनुरूप नहीं होतीं वरन् उन पर थोपी हुई होती हैं। "जिस जाति, धर्म और भाषायी समुदाय में मेरा जन्म हुआ था, उसका निर्णय (चयन) मेरा किया हुआ नहीं था।"

यद्यपि समाज के स्तरीकरण में परिवर्तन होता रहता हैं किन्तु इस परिवर्तन की गति अत्यंत धीमी होती है अतः ये स्तर कुछ समय तक यथावत् रहते हैं।

सैकड़ों महान् विचारकों; जैसे **ऐमिले डर्खीम, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर** एवं **लेवी स्ट्रॉस** आदि के लेखन में सामाजिक संरचना तथा स्तरीकरण, मूल अवधारणाओं के' रूप में विद्यमान हैं। **टैल्कॉट पार्सन** ने अपने प्रकार्यात्मक विश्लेषण में सामाजिक संरचना तथा स्तरीकरण को केन्द्रीय अवधारणाओं के रूप में स्थान दिया है। भारत में, लोकतंत्रीय राजनीति, इन्हीं सरंचनाओं के प्रसंग में कार्य करती है। हम, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, भीमराव अंबेडकर, राममनोहर लोहिया तथा आधुनिक भारत के ऐसे ही बीसियों विचारकों एवं राजनीतिज्ञों के राजनीतिक विचारों एवं कार्यों को तब तक नहीं समझ सकते जब तक सामान्यतः सामाजिक संरचनाओं एवं विशेषतः भारतीय समाज की संरचना के परिप्रेक्ष्य में उनके दृष्टिकोण को न समझ लें। राजनीतिक संस्थाओं का अभिविन्यास तथा उनकी कार्यप्रणालियों को अधिकतर उस विधि पर निर्भर देखा जाता है जिसके आधार पर ये (संस्थाएँ) इन संरचनाओं के अंतर्गत कार्य करती है।

9.2 तात्पर्य

समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में 'सामाजिक संरचना' तथा 'स्तरीकरण' केन्द्रीय अवधारणाये हैं। किन्तु समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों और उनके दृष्टिकोणों में जिस प्रकार पर्याप्त अंतर है उसी प्रकार इन अवधारणाओं के प्रति भी उनकी दृष्टियाँ भिन्न भिन्न हैं। इन अवधारणाओं के कार्यक्षेत्र एवं निर्धारण को लेकर बहुत बड़ी मत भिन्नताएँ हैं। साथ ही साथ, संरचनात्मक विश्लेषण एवं व्याख्या का उपयोग करने वाली दो मुख्य धाराएँ है - पहली संरचनावादी या

संरचनात्मक प्रकार्यवादी या प्रकार्यवादी। 'संरचना' तथा 'स्तरीकरण' पदों के प्रयोगों में स्पष्ट अंतर हैं। एक दूसरी प्रमुख धारा **'मार्क्सवादी धारा'** है। इन दो धाराओं से संबद्ध **कार्ल मार्क्स** तथा **मैक्स वेबर** इन अवधारणाओं का प्रयोग अपने अपने ढंग से करते हैं। दूसरी समस्या पारिभाषिक शब्दावली की है। कुछ पद; जैसे 'सामाजिक संरचना', 'सामाजिक तंत्र' तथा 'सामाजिक वर्ग' अनेक पक्षों में परस्पर व्याप्त हैं। यही हाल 'सामाजिक स्तरीकरण' तथा 'सामाजिक निर्माण' जैसे पदों का है। यह भी जानना आवश्यक है कि 'संरचना' तथा 'स्तरीकरण' जैसे पदों का उद्‌गम 19वीं शताब्दी में जीव विज्ञान एवं भूगर्भ विज्ञान के प्रतिपादनों में प्राप्त होता है। आज सामाजिक यथार्थ के प्रति हमारा दृष्टिकोण उन प्रतिपादनों के अनुरूप नहीं हो सकता।

i) प्रारंभिक तौर पर हम कह सकते हैं कि सामाजिक संरचनाएँ, अंशों के भागों के साथ ऐसे व्यवस्थित संबंध है जिनसे एक ऐसी व्यवस्था बनती हो जिनमें सामाजिक जीवन के अवयव परस्पर सम्बधित होते हों। पारस्परिक क्रिया के ऐसे संबंधों या ढाँचों में समयबद्ध निरंतरता होती है। अतः, सामाजिक संरचनाओं में निम्नलिखित द्विपक्षीय संकेत होते हैं -

   क) वे सामाजिक अभिकर्ताओं या वर्गों के पारस्परिक क्रियाकारी ढाँचे होते हैं।

   ख) उनमें समय सापेक्ष दृढ़ता, क्षमता एवं स्थायित्व जैसे गुण निहित होते हैं।

ii) सामाजिक संरचनाओं की भाँति ही सामाजिक स्तरीकरण के संबंध में भी समाजशास्त्रियों में पर्याप्त मत भिन्नता है।

संरचनात्मक प्रकार्यवादी दृष्टिकोण से **टैल्कॉट पार्सन्स** का कहना है कि सामाजिक स्तरीकरण, "किसी विशिष्ट सामाजिक तंत्र में व्यक्तियों तथा कुछ विशिष्ट सामाजिक पक्षों में उनके पारस्परिक श्रेष्ठ या हीन व्यवहार की विभेदन क्रम-स्थिति को कहा जाता है।"

यदि इस परिभाषा को स्वीकार कर लिया जाए तब भी सामाजिक अभिकर्ताओं की क्रम स्थिति के विषय में मत भिन्नता बनी रहेगी क्योंकि क्रम स्थिति के मानदंडों पर सदैव सहमति होना संभव नहीं है। यदि कोई, 'वर्ग परिप्रेक्ष्य' में विचार करेगा तो सामाजिक स्तरीकरण का तात्पर्य प्रकार्यात्मक परिप्रेक्ष्य से गृहीत तात्पर्य से सर्वथा विपरीत होगा। यहाँ ज़ोर 'स्थिति-क्रम' पर न होकर 'वर्ग-संघर्ष' पर होगा। यह संघर्ष, उत्पादन के संबंधों पर आवेष्टित शोषण के कारण होगा। मार्क्स ने 'वर्ग' की परिभाषा देते हुए इसे स्पष्ट किया है।

"वर्ग, उन असंख्य परिवारों के समुदाय को कहा जाता है जो अपने अस्तित्व के लिए किन्हीं विशिष्ट आर्थिक स्थितियों में रहता हो और अपनी जीवन पद्धतियों, हितों एवं संस्कृति की दृष्टि से अन्य समुदाय से पृथक हो और इसी कारण उस से शत्रुतापूर्ण विरोध रखता हो।"

किसी सामाजिक तंत्र में, स्तरीकरण, सामाजिक कार्य को किसी विशिष्ट दिशा में ले जाता है। यही वह छलनी है जिसमें होकर समस्त विभेदक संप्रेषणों एवं भिन्नताओं को गुजारा जाता है। इसमें व्यवस्था के एक ऐसे तंत्र की पुष्टि की जाती है जिसके द्वारा अभिकर्ताओं (समुदाय के सदस्यों) को जीवन के अवसर प्रदान किए जाते हैं। मार्क्सवाद मानता है कि क्रान्ति के समय, क्रान्तिकारी जन-समुदाय, सामाजिक स्तरीकरण को ही अपने आक्रमण का मूल लक्ष्य बनाता है और उसमें अंतर्निहित समस्त संबंधों को पूर्णतः 'सुधार देना' चाहता है। भारत के विश्रुत समाजशास्त्री स्व. एम. एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित एक महत्वपूर्ण अवधारणा यह है कि भारतीय समाज की जाति व्यवस्था में 'संस्कृतीकरण', सामाजिक गतिशीलता का एक ऐसा माध्यम है जिसमें हीन जातियाँ, उच्च जातियों के विश्वासों, व्यवहारों और अनुष्ठानों को अपनाकर उच्च स्तर की ओर अग्रसर होती हैं।

बोध प्रश्न 1

नोटः क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सामाजिक संरचनाओं का तात्पर्य समझाइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित को पढ़िए और सही उत्तर पर निशान लगाइए।
विभेदक क्रम - स्थिति ..... को कहा जाता है।
(क) सामाजिक स्तरीकरण (ख) सामाजिक संरचना
(ग) सामाजिक तंत्र (घ) सामाजिक वर्ग

9.3 सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य

सामाजिक जगत को समझने के लिए अनेक विचारकों ने 'संरचना' **(Structure)** पद का प्रयोग किया है। उनमें से कुछ सुस्पष्ट प्रवृत्तियों को पहचानने का प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है।

9.3.1 संरचनावाद

सरंचनावादी, दीर्घकालीन संरचनाओं पर ज़ोर देते हैं।

संरचनावाद, प्रमुख बौद्धिक प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति थी जिसमें विविध प्रकारों से की गई संरचनाओं की कल्पना को पूर्णतः प्राथमिकता तथा क्षमता प्रदान की गई थी तथा विषय की एक निकाय के रूप में अवहेलना की गई थी। इस सकल्पना में संरचनाओं को भौतिक जगत से दूर करके संस्कृति, आस्था एवं विचार के क्षेत्र में रोपा गया था। प्रकार्यवादियों की धारणा के विपरीत, इसमें सामाजिक यथार्थ के साथ किसी प्रकार की टकराहट की संभावना पर विश्वास नहीं किया जाता। संरचनाओं के प्रचालन का परिणाम या तो सामाजिक गतिविधि एवं रूपान्तरण में हुआ या उसके द्वारा इस (गतिविधि एवं रूपान्तरण) की व्याख्या की गई।

इस प्रवृत्ति के प्रारंभिक प्रयोग भाषा के अध्ययन में सुस्पष्ट हुए। उस समय तक शब्द एवं भाषा को अवधारणाओं की अभिव्यक्ति तथा विषयवस्तुओं के निरूपण माना जाता था। भाषायी संरचनावाद ने बोध को भाषा के आंतरिक तत्व के रूप में स्थापित किया। भाषायी संकेत, एक ध्वनि-बिंब तथा एक धारणा (अर्थ) से निर्मित होता है। ध्वनि-बिंब का संबंध इस संकेत की ध्वनियों एवं अक्षरों से होता है जब कि धारणा एक मानसिक निर्मिति होती है। ध्वनि बिंब, द्योतक होता है जिससे धारणा द्योतित होती है। भाषायी संरचनावाद ने यह निर्दिष्ट किया है कि द्योतक (ध्वनि बिंब) और द्योतित (धारणा का अर्थ) का संबंध यादृच्छिक (मनमाना) होता है जो किसी परिपाटी (या रूढ़ि) पर आधारित होता है। यथार्थ वृक्ष तथा शब्द 'वृक्ष' 8में कुछ भी सामान्य (उभयनिष्ठ) नहीं होता। निर्णायक संबंध संकेत

तथा यथार्थ जगत की वस्तुओं में नहीं होता वरन् संकेत और भाषा की समग्र व्यवस्था के बीच होता है। सकारात्मक अर्थ को व्यंजित करने वाले एक साथ संचलित ध्वनि बिंबों के बीच के अंतरों के संबंध द्वारा अर्थ की प्राप्ति होती है। यह (अर्थ) संरचना एवं रूप का उत्पाद होता है न कि धारण निर्मित या द्योतित पदार्थ का। भाषा, अर्थ का सर्जन करती है, उसका वहन नहीं करती।

समाज मानव विज्ञानी **लेवी स्ट्रॉस** के अध्ययन में संरचना का तात्पर्य प्रकार्यवादियों द्वारा कथित अनुभव जन्य संरचनाओं से सर्वथा भिन्न है। निरंतर, अटल रहने वाली संरचना, संपूर्ण मानव-समाज-व्यवस्था की विशेषता होती है। वह किसी वैज्ञानिक संस्कृति से जुड़े हुए किसी विशिष्ट समुदाय की संरचना मात्र नहीं होती। वैज्ञानिक ज्ञान केवल ऐन्द्रिक निरीक्षणों से प्रेरित नहीं होता। ऐसे निरीक्षण बोध गम्य भी होने चाहिए। उसने (लेवी स्ट्रॉस ने) व्यापक रूप से बदलते हुए सामाजिक व्यवहारों को सैद्धान्तिक रूप से गठित संरचना की अभिव्यक्तियाँ माना। (युग विशेष में) विद्यमान (सामाजिक) व्यवहारों से किसी संरचना की पुष्टि नहीं होती किन्तु विभिन्न सामाजिक व्यवहारों की व्याख्या किसी एक सामाजिक संदर्भ से की जा सकती है। लेवी स्ट्रॉस के लिए संरचनाएँ, निदर्श (नमूने) थीं। मार्क्सवाद पर इस संरचनावाद का गहरा प्रभाव पड़ा था और उसे फ्रांसीसी दार्शनिक **लुई ऐल्युज़र** के द्वारा विकसित किया गया था। मनोविश्लेषण; विशेष रूप से **जैक्स लैकन** के कार्य पर भी संरचनावाद का भारी प्रभाव पड़ा था।

वर्तमान काल को संरचनावाद के इन सभी रूपों के प्रति भारी विद्रोह व्यक्त करने वाले युग के रूप में कहा जा सकता है। संरचनावाद में संरचनाओं की स्थिरता की धारणा ग्रहण की जाती है। उसमें इतिहास, संस्कृति, या ऐसी धरोहर के लिए स्थान नहीं होता। उसमें ऐसे किसी विचारशील पक्ष के लिए कोई स्थान नहीं होता जो गतिशील संरचना युक्त अवयवों को कोई अर्थ प्रदान करता हो।

9.3.2 प्रकार्यवाद (Functionalism)

संरचनात्मक कार्यवादीः सामाजिक व्यवस्था के अनुरक्षण का महत्व

प्रकार्यवादी, जिन्हें संरचनात्मक कार्यवादी भी कहा जाता है, वैयक्तिक प्रयासों को कम महत्व देते हैं और सामाजिक संरचनाओं को अधिक पसंद करते हैं। इस प्रवृत्ति के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिनिधि **ऐमिले डरर्वीम, ए. आर. रैउक्लिफ़ ब्राउन** तथा **टैल्कॉट पार्सन्स** हैं। वे सामाजिक संरचनाओं को अभिकर्ताओं से बाहरी मानते हैं। ये संरचनाएँ अलग-अलग समाजों (और समुदायों) में बदल जाती हैं तथा एक समुदाय से दूसरे समुदाय की समानता अथवा विषमता को स्पष्ट करती हैं। सामाजिक जीवन में व्यक्तियों के व्यवहार की व्याख्या उन्हें ध्यान में रखकर ही की जाती है। वे सामाजिक तथ्यों की सोची समझी छानबीन उन्हें साथ रखने वाली और पारस्परिक क्रियाओं के ढाँचों की पहचान करने पर ज़ोर देते हैं। वे मानते हैं कि समाज में एक ऐसी स्वाभाविक मानकी व्यवस्था होती है जो सभी के लिए कर्तव्यों और दायित्वों को निश्चित करती है, अतिक्रमणकारी व्यवहार पर अंकुश लगाती है और मूल्यों के प्रति आम सहमति बनाती है। यह प्रवृत्ति निश्चित रूप से उस भूमिका को कम महत्व देती है जिसका निर्वाह अभिकर्ता सामाजिक संरचना के समर्थन संबंधी प्रकार्य में करते हैं।

यह प्रवृत्ति सामाजिक संरचनाओं की कार्य पद्धति तथा नैसर्गिक प्रक्रियाओं में यथेष्ट अंतर को स्पष्ट नहीं करती। यद्यपि इसमें मूल्य -निरपेक्षता का दावा किया जाता है किन्तु विद्यमान सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने की ओर इसका सुदृढ़ झुकाव होता है और सामाजिक परिवर्तन को, यह, विद्यमान संरचनाओं के पुनर्गठन के रूप में स्वीकार करती है।

9.3.3 मार्क्सवाद

मार्क्सवाद : आर्थिक संबंधों पर आधारित वर्ग-संरचना को महत्व

मार्क्सवादियों ने समुदायों को समझने के लिए **वर्ग-संरचना** को कुंजी मानने पर ज़ोर दिया है। वर्गों का निर्माण, उत्पादन के साधनों एवं समग्र सामाजिक उत्पादन के साथ सामाजिक अभिकर्ताओं के संबंध तथा उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न एकात्मकता या संबंध-सूत्रों के आधार पर होता है। वर्ग-संरचना संबंधी मार्क्सवादी दृष्टिकोण में आर्थिक संबंधों पर खुले आम ज़ोर दिया गया है। इसे 'आधार' एवं 'अधिरचना' (ऊपरी ढाँचे) के रूपकों द्वारा अभिव्यक्ति किया गया है। जहाँ अर्थव्यवस्था आधार बनाती है वहीं राजनीतिक, सांस्कृतिक, सैद्धान्तिक तथा वैधानिक क्षेत्र अधिरचना का निर्माण करते हैं।

किसी समाज (या समुदाय) की वर्ग-संरचना मूल रूप से दो आधारभूत वर्गों के संबंध पर टिकी होती है और शेष वर्ग जो भी भूमिका अदा करते हैं वह इन्हीं आधारभूत वर्गों के द्वारा स्पष्ट होती है। उदाहरण के लिए पूँजीवादी समाज में आधारभूत वर्ग, **मध्यम वर्ग** (बुर्जुआ) तथा **श्रमजीवी वर्ग** (प्रोलितेरिएन) होते हैं। अन्य वर्ग; जैसे, किसान, कारीगर, व्यवसायी, ज़मींदार आदि भी हो सकते हैं किंतु वे वर्ग क्या क्या भूमिकाएँ अदा कर सकते हैं, इसका निर्णय आधारभूत वर्ग ही करते हैं।

मार्क्सवादी मानते हैं कि वर्गों का निर्माण, वर्ग-संघर्ष का परिणाम होता है। राजनीतिक संघर्ष में और उसी के माध्यम से ये वर्ग, अपने मित्रों और शत्रुओं की पहचान करते हैं। मार्क्सवाद, **आर्थिक प्रक्रिया** के संदर्भ में राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा सैद्धान्तिक संरचनाओं की **स्वायत्तता** को स्वीकार करता है किन्तु इस स्वायत्तता के स्वरूप के विषय में वह स्पष्ट नहीं हैं। मार्क्सवादी स्वायत्त सामाजिक स्तरों एवं गुटों के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं किन्तु वे इन्हें भी वर्गों में बंद करके देखते हैं। वे वर्ग-संकरीय या वर्ग पारीय घटनाओं जैसे, व्यक्तित्व की पहचान या लिंग भेद के मुद्दों की व्याख्या करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। मार्क्सवादी मानव-अभिकरण की स्वायत्तता को मानते हैं किंतु वर्ग-संरचना के साथ उसके संबंध को गंभीर विवाद का विषय भी मानते हैं। इसके अतिरिक्त मार्क्सवादी वर्ग-संरचना, नैतिक क्षेत्र और सामाजिक स्थायित्व की सुदृढ़ता के संबंध को भली भाँति आत्मसात नहीं कर सके हैं। भारत में वर्ग-संरचना तथा जाति-संरचना का संबंध समझना अत्यंत जटिल समस्या है।

9.3.4 वेबरीय दृष्टिकोण

मैक्स वेबरः बहुआयामी एवं एकीकृत दृष्टिकोण

मैक्स वैबर ने सामाजिक संरचनाओं को स्पष्ट करने के लिए **बहुआयामी दृष्टिकोण** अपनाने पर ज़ोर दिया। उसने संरचना एवं अभिकरण तथा पदार्थ एवं मानकी आयामों के एकीकरण का प्रयत्न किया। उसने जानकार व्यक्ति की भूमिका पर विशेष बल दिया और उसे सामाजिक संरचनाओं के प्रचालन का निष्क्रिय पात्र भर नहीं माना। उसने तर्क दिया कि अर्थ (तात्पर्य) न तो सामाजिक जगत में अंतर्निहित होता है और न खोजे जाने के लिये किसी युक्तिसंगत जाँच पड़ताल की प्रतीक्षा कर रहा होता है। मानव अपने चारों ओर के सामाजिक जगत के अर्थ की रचना और व्याख्या स्वयं ही करता रहता है। अतः विभिन्न मूल्यों एवं हितों को मूर्त रूप देने वाले भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण, सामाजिक संरचनाओं के अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से ले सकते हैं। वेबर ने प्रतिपादित किया कि 'कार्य के अनिर्दिष्ट परिणाम', बाज़ार, धन और भाषा जैसी सामाजिक संरचनाओं को जन्म देते हैं। उसने कहा कि पूँजीवाद का उदय प्रोटेस्टैण्ट आचार शास्त्र का परिणाम था जिसने अपने अनुयायियों

में आत्मानुशासन और वैयक्तिक मुक्ति की दृष्टि से अपने कार्यों के लिये ईश्वर के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया था।

मात्र संरचनाएँ नैतिक अनुमोदन शक्ति का कारण नहीं होतीं। शक्ति अपने आप में विधि सम्मत नहीं हो सकती। मैक्स वेबर ने **शक्ति** (पावर) तथा **प्राधिकार** (औथरिटि) में भेद किया। प्राधिकार को उसने **विधि सम्मत शक्ति** कहा। विधि सम्मत प्राधिकार में **स्वैच्छिक अनुपालन** का तत्व शामिल होता है। वेबर ने प्राधिकार के तीन स्रोत बताएः **परंपरागत**, **विधिक-युक्ति** संगत और **चमत्कारिक**। परंपरागत अधिकार, श्रेय मूलक तथा उत्तराधिकार दत्त होते हैं; विधिक-युक्ति संगत अधिकार, बौद्धिकीकरण तथा लक्ष्योन्मुख कार्य के निर्वैयक्तिक तर्क पर आधारित होते हैं और चमत्कारिक अधिकार (या शक्ति) व्यक्ति विशेष में या उसके साथ एकीकृत असाधारण वैयक्तिक शक्ति को कहा जाता है।

वेबर का विचार था कि युक्तिसंगतीकरण की प्रक्रिया (जिसे चाहने की सामर्थ्य के रूप में कहा गया), बौद्धिकीकरण तथा निर्वैयक्तिक एवं लक्ष्योन्मुख कार्य मानवीय गतिविधि में क्रमशः बढ़ रहे हैं और उस पर हावी हो रहे हैं। इसका प्रभाव सभी प्रथाओं पर पड़ता है। उस स्थिति को व्यक्त करने के लिये, जिसमें साधनों एवं उपादानों की चिंता मानवीय प्रयोजनों के संदर्भ को परे कर देती है, वेबर ने लौह-पिंजर के रूपक का प्रयोग किया है।

9.3.5 वेबर तथा मार्क्स के सिद्धान्तों का एकीकरण - हैबरमास

हमारे युग का एक अन्य महत्वपूर्ण विचारक **हैबरमास** है जिसने मार्क्सवाद के साथ संबद्धता रखते हुए भी वेबर की धारणा को आगे बढ़ाया है। वह सामाजिक संरचनाओं तथा उनके द्वारा संकेतित युक्तिसंगतीकारक एवं भविष्योन्मुख दृष्टि पर आधारित अभिविन्यासों को मानता है किन्तु वह शक्ति के आयामों और उनमें निहित प्रभुत्व को भी ध्यान में रखता है।

बोध प्रश्न 2

नोटः क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) सामाजिक संरचनाओं के संबंध में संरचनावादी दृष्टिकोण की रूपरेखा समझाए।

.....

.....

.....

.....

2) मार्क्स द्वारा परिभाषित 'सामाजिक वर्ग' की तीन विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

9.4 सामाजिक स्तरीकरण

हम पहले के पृष्ठों में संरचनाओं और उनके संबंध में संरचनावादियों, प्रकार्यवादियों, वेबरीयों तथा मार्क्सवादियों की व्याख्याओं पर विचार कर चुके हैं। हमने उन मतों के अंतरों पर भी ध्यान दिया है। इस भाग में हम स्तरीकरण या समाज में व्याप्त स्तरों के विषय में अध्ययन करेंगे। किसी विशेष राजनीतिक प्रणाली से संबद्ध संभावनाओं में स्तरीकरण का विशेष महत्व होता है। **अरस्तु** ने कहा है कि संवैधानिक सरकार की जीवन क्षमता विशेष प्रकार के स्तरीकरण पर निर्भर होती है। **लेनिन** ने ज़ारशाही रुस के समाजवादी रूपान्तरण की संभावना उसके बदलते हुए सामाजिक स्तरीकरण को समझने पर ही आधारित मानी थी।

9.4.1 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्स उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व एवं नियंत्रण तथा उत्पादन की प्रक्रिया के साथ सामाजिक अभिकर्त्ताओं के संबंध को सामाजिक स्तरीकरण के मानदंड मानता है। मार्क्स, स्तरों एवं गुटों की अवधारणाओं का, वर्ग विशेष में पाए जाने वाले संघर्षरत हितों के सूचक के रूप में उपयोग भी करता है।

भारत जैसे देश में मार्क्सवादियों की दृष्टि से निम्नलिखित वर्ग होंगेः

क) **बुर्ज़ुआ** (विशेष रूप से औद्योगिक बुर्ज़ुआ), जिनका उत्पादन के साधनों तथा उपयुक्त अधिशेष पर स्वामित्व एवं नियंत्रण होता है।

ख) **ज़मींदार,** जो भूमि पर स्वामित्व या क़ानूनी हक़ रखते हैं, उत्पादन प्रक्रिया में कोई भूमिका अदा नहीं करते फिर भी उत्पादन में से हिस्सा पाते हैं।

ग) **श्रमिक** (विशेष कर औद्योगिक श्रमजीवी), जिनका उत्पादन के साधानों पर न स्वामित्व होता है और न नियंत्रण तथा आजीविका के लिये जो अपनी श्रम-क्षमता पर निर्भर रहते हैं।

घ) **कृषक;** विविधतामय स्तर, जिनके सदस्यों का भूमि तथा उत्पादन के अन्य साधनों की असमान सीमाओं पर अधिकार होता है और जो उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। (इस वर्गीकरण/स्तरीकरण में धनी कृषक एक समस्यामूलक वर्ग है। कुछ पक्षों में वह औद्योगिक बुर्ज़ुआ के निकट होता है किन्तु दूसरे कुछ पक्षों में वह कृषक ही है।) इसी वर्ग में वे ग्रामीण श्रमजीवी (भूमिहीन खेतिहर मज़दूर एवं सीमांत कृषक) को रखता है, जो प्रायः दूसरों के लिये काम करके ही आजीविका कमाते हैं। तथा

ङ) **पैटी बुर्ज़ुआ,** जिनमें व्यवसायी, व्यापारी एवं कारीगर शामिल हैं जो उत्पादन प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से तो भाग नहीं लेते किंतु उसके लिये अनेक सेवाएँ एवं निपुणताएँ प्रदान करने जैसी अनेक भूमिकाओं में भाग लेते हैं।

वर्ग-चेतना - तथ्य यह है कि यदि किसी गुट में, वर्ग विशेष के अनेक वस्तुनिष्ठ लक्षण विद्यमान हों किन्तु उसमें आवश्यक सीमा तक चेतना न हो तो उसे 'वर्ग' नहीं कहा जा सकता। **मार्क्स** ने किसी वर्ग के विशिष्ट एवं विभिन्न क्षणों का भी उल्लेख किया है। **प्रथम,** जहाँ किसी वर्ग के सदस्य अपनी सदस्यता की स्थिति के प्रति न्यूनतम सचेत होते हैं और आर्थिक व्यवहार के अतिरिक्त उनके अन्य व्यवहार उनकी वर्ग-स्थिति के अनुरूप नहीं होते। **द्वितीय,** जहाँ स्वयं में वर्ग होता है। इस स्थिति में विद्यमान वर्ग-संरचना में रहते हुए भी कोई वर्ग सामूहिक रूप में कुछ माँगे उठाकर अपने उत्थान के लिये प्रत्यन करता है; जैसे,

मज़दूर अपने परिश्रमिक की वृद्धि के लिये संघर्ष करते हैं। **तृतीय,** जहाँ 'स्वयं के निमित्त वर्ग' होता है। कोई वर्ग, विद्यमान वर्ग-संरचना में बिना किसी धमकी के अपने वर्ग-हितों की रक्षा का प्रयत्न करता रहता है।

मार्क्सवादी दृष्टि से सामाजिक स्तरीकरण को समझाने में **इटली** के मार्क्सवादी सिद्धान्तवेत्ता **एण्टोनियो ग्रैम्स्की** का योगदान उल्लेखनीय है। उसने यह प्रश्न उठाया था कि मूलतः वर्ग-स्तरीकरण पर आधारित समाजों में प्रभावशाली वर्ग किस प्रकार प्रभुत्व जमा लेते हैं। उसके द्वारा प्रयुक्त अवधारणाओं में से एक 'आधिपत्य' थी। इसका अभिप्राय केवल प्रभुत्व-स्थापन नहीं था वरन् नेतृत्व था।

9.4.2 वेबरीय दृष्टिकोण

जहाँ मार्क्स ने 'वर्ग' को सामाजिक स्तरीकरण का आधार माना था, वहीं वेबर ने स्तरीकरण का **वर्ग, प्रतिष्ठा** एवं **शक्ति** पर आधारित नमूना पेश किया। उसने 'वर्ग' को सर्वथा भिन्न रूप में स्वीकार किया। उसके मत से 'वर्ग' ऐसे लोगों से बना होता है जिन्हें आय के लिये, माल एवं निपुणता की विन्यास शक्ति के निर्धारण के समान जीवन अवसर उपलब्ध हों। **वर्ग** का निर्णायक पक्ष (महत्व) बाज़ार में उसकी स्थिति के आधार पर बनता है। वर्ग-निर्माण के लिये वर्ग-चेतना कोई अनिवार्य अपेक्षा नहीं होती।

प्रतिष्ठा से अभिप्राय है, किसी गुट द्वारा गृहीत सामाजिक श्रेणी, सम्मान एवं आदर। ये जीवन की किसी विशिष्ट शैली से जुड़े हुए लक्षण होते हैं और इन्हीं के अनुसार विभिन्न समुदायों को उच्च या निम्न श्रेणी का कहा जाता है। प्रतिष्ठा के संदर्भ में एक समुदाय और दूसरे समुदाय में **श्रेणी, शैली** तथा **व्यवसाय** की दृष्टि से अंतर आते रहते हैं। अतः, जहाँ वर्ग सार्वभौमिक होता है वहीं प्रतिष्ठा में अधिक से अधिक विशेषीकृत होने की प्रवृत्ति रहती है। भारत में, जाति प्रथा, प्रतिष्ठा व्यक्त करने की विशिष्ट पद्धति है। जाति के साथ जुड़ा हुआ परंपरागत श्रेणीकरण, स्तरीकरण के प्रमुख कारकों में से एक हो जाता है। वेबर ने शक्ति को किसी मनुष्य या समुदाय (गुट) का वह अवसर माना है जिसके आधार पर वह दूसरों के विरोध के बावजूद अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता है। इस रीति से उसने शक्ति को वैयक्तिक रूप से अभिकर्ताओं में विसर्जित माना। यहाँ उसका मत मार्क्स से सर्वथा भिन्न है क्योंकि मार्क्स के अनुसार शक्ति मूलतः वर्ग-संबंध होता है। साथ ही वेबर ने राज्य को बाध्यताकारी शक्ति के एकाधिकार के लिए उत्तरदायी माना। इस धारणा में राज्य तथा व्यक्ति (सामाजिक अभिकर्त्ता) के बीच मध्यवर्ती संस्थाओं के लिये कोई गुंजायश नहीं रह जाती।

वेबर के मत से **स्तरीकरण** के तीनों रूप -- **वर्ग, प्रतिष्ठा** एवं **शक्ति** -- कुछ सामाजिक अभिकर्त्ताओं में अभिसरित हो सकते हैं पर ऐसा सदा अनिवार्य नहीं है। कभी-कभी इनमें से कोई एक, शेष दो को प्रभावित कर सकता है या किसी दूसरे में परिवर्तित हो सकता है। किन्तु वे (तीनों) कम होकर किसी एक रूप में नहीं सिमट सकते। वेबर ने स्तरीकरण के दो प्रतिरूप माने हैं -- श्रेयाधारित एवं उपलब्धि। श्रेयाधारित स्तरीकरण; चाहे वह वर्ग हो, प्रतिष्ठा हो या शक्ति हो; उत्तराधिकार में प्राप्त लक्षणों पर आधारित होता है। उपलब्धि, संबद्ध व्यक्ति या गुट के सफल प्रयत्नों के परिणाम की प्राप्ति होती है।

9.4.3 प्रकार्यवादी (Functionalist) दृष्टिकोण

स्तरीकरण के संबंध में प्रकार्यवादी दृष्टिकोण के विकास का श्रेय **ऐमिले डरर्वीय, किंग्सले डेविस, टैल्कॉट पार्सन्स** तथा **रॉबर्ट के. मर्टन** को दिया जाता है।

प्रकार्यवादियों की दृष्टि में, आधुनिक समाज, विभिन्न भूमिकाओं के अत्यधिक विभेदित तंत्र का एक जटिल समवाय है। इन भूमिकाओं का निर्वाह करने के लिये विभिन्न स्त्री-पुरुषों को तैयार किया जाता है। स्तरीकरण, भूमिकाओं के इसी वितरण पर आधारित होता है। इन भूमिकाओं के द्वारा ही व्यक्तियों एवं गुटों के लिये विभिन्न लक्ष्य तय किए जाते हैं।

प्रकार्यवादी, स्तरीकरण को एक ऐसी क्रियाविधि मानते हैं जिसके माध्यम से, समाज किसी जटिल तंत्र में आवश्यक विविध पदों (अवस्थितियों) को प्राप्त करने के लिये, स्त्री-पुरुषों को प्रोत्साहित करता है। इन पदों के लिये भिन्न-भिन्न निपुणताओं की आवश्यकता होती है और उनके बदले भिन्न-भिन्न प्रतिफल (वेतन, पारिश्रमिक आदि) प्रदान किए जाते हैं। स्तरीकरण के माध्यम से सामाजिक अभिकर्त्ताओं को उनकी भूमिकाएँ निभाने के लिए अभिप्रेरण प्रदान किया जाता है। भूमिकाओं के अनुरूप ही प्रतिष्ठा को मान्यता प्राप्त होती है।

पार्सन्स ने सामाजिक श्रेणी-निर्धारण के लिये आधार के रूप में प्रयुक्त होने वाले अभिलक्षणों के तीन समुच्चय माने हैं:

क) स्वामित्व, अर्थात् वे विशिष्ट लक्षण जिन पर जन का अधिकार हो।

ख) वैयक्तिक विशेषताएँ; जैसे, जाति, वंशानुक्रम या लिंग।

ग) निष्पादन अर्थात् भूमिकाओं के निर्वहण का मूल्यांकन।

विभिन्न समाजों में अलग-अलग अभिलक्षणों पर ज़ोर दिया जाता है। **सामंती समाज** में **वंशानुक्रम** का महत्व माना जाता है; **पूँजीवादी** समाज, **स्वामित्व** को सर्वोपरि मानता है और **साम्यवादी** समाज में **निष्पादन** को मूल्यवान माना जाता है।

प्रकार्यवादी मानते हैं कि औद्योगिक समाज में श्रम-विकास के कारण व्यक्तिगत सफलता से संबद्ध मूल्यों के केवल एक समुच्चय को ही प्रोत्साहन दिया जाता है। इसका परिणाम अन्य संक्रामण (विजातीय हस्तान्तरण) के रूप में प्रकट होता है। प्रकार्यवादियों के मत से एकीकृत व्यक्तित्व के लिये **स्थायी समाज** का होना सबसे पहली शर्त होती है। यह भी, कि भूमिका निद्यतन पर आधारित स्तरीकरण में असमानाएँ रहती हैं अतः सैद्धान्तिक औचित्य के आधार पर वर्गों की जो व्याख्या इसमें की जाती है उसमें भी असमानता के तंत्र को उचित ठहराया जाता है और उसका प्रचार किया जाता है। अतः नैतिक चेतना एवं मानकी व्यवस्था को सम्मिलित करने वाले सामाजिक एकात्मता के ढाँचों को प्रकार्यवादी अत्यधिक महत्व देते हैं। इस कार्य में वे धर्म की भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं।

बोध प्रश्न 3

नोटः क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) निम्नलिखित को ध्यान से पढ़िएँ और सही उत्तर पर निशान लगाइए।

क) उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व एवं नियंत्रण।

ख) आदर एवं प्रतिष्ठा।

ग) साझे जीवन-अवसर।

घ) सामाजिक भूमिका

2) प्रकार्यवादी, नैतिक चेतना तथा मानकों पर आधारित सामाजिक एकात्मता पर ज़ोर क्यों देते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.5 सारांश

जिस इकाई का अध्ययन हमने अभी किया है उसमें सबसे पहले यह बताया गया है कि सामाजिक संरचना का अर्थ क्या होता है और विभिन्न विचारक उसके बारे में क्या धारणाएँ रखते हैं। सामाजिक व्यवहार तथा नीतियों की व्याख्या के लिये आधार रूप, सामाजिक संरचना, समग्र के साथ उसके अवयवों का संबंध मात्र हैं। सामाजिक जीवन के तत्व आपस में एक व्यापक परिधीय ढाँचें से जुड़े होते हैं। सामाजिक संरचना, व्यक्तियों में संपर्क स्थापित करती है और एक निश्चित व्यवहार को समर्थन देती है। **लेवी स्ट्रॉल** जैसे संरचनावादी, संरचनाओं को सार्वभौमिक प्रतिरूप मानते हैं जब कि प्रकार्यवादी, व्यक्तियों (समाज के सदस्यों) के व्यवहार की व्याख्या उन सामाजिक संरचनाओं के संदर्भ में करते हैं जिसमें वे रहते हैं। संरचनात्मक समग्र को बनाए रखने को प्राथमिकता देने की दृष्टि से (संरचनावादी एवं प्रकार्यवादी), दोनों ही, वैयक्तिक पहल को हतोत्साहित करते हैं। **मैक्स वेबर** ने **शक्ति**, **प्राधिकार** तथा **विधि सम्मतता** में अंतर करते हुए एक बहुआयामी दृष्टिकोण को पसंद किया और सामाजिक संरचनाओं को प्रचालित करने के लिये व्यक्तियों को महत्व दिया। **कार्ल मार्क्स** ने **संरचना** को **वर्ग-स्तरों** के रूप में माना जिसमें आर्थिक निमित्तों पर जोर दिया जाता है और उन्हीं पर क़ानूनी-राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक तंत्रों का निर्माण किया जाता है। विभिन्न दृष्टिकोण से सामाजिक संरचनाओं को समझ लेने के बाद हमने इस विषय पर विचार किया कि संरचनाओं का विभाजन किस प्रकार किया जाता है। इसी को स्तरीकरण कहते हैं। स्तरीकरण के अध्ययन की आवश्यकता इसलिये है कि **अरस्तू** के अनुसार इससे **लोकतांत्रिक सरकार का गठन** व्यवहार्य हो जाता है और **लेनिन** के अनुसार इससे **समाजवाद की स्थापना** संभव हो पाती है।

मार्क्स ने **समाज** को, **आर्थिक गतिविधियों** पर आधारित **विभिन्न वर्गों** में विभाजित किया और वर्ग-चेतना या किसी विद्यमान वर्ग सामान्य संपत्ति की संभावनाओं को खोजा। मार्क्स का अनुगमन करते हुए **ऐण्टोनियो ग्राम्स्की** ने समाज में प्रभावी वर्गों के व्यवहार का विशेषण किया और इस संबंध को '**आधिपत्य** (हैगेमनी)' नाम दिया। **मैक्स वेबर** ने **स्तरीकरण** की व्याख्या **वर्ग**, **प्रतिष्ठा** तथा **शक्ति** के आधार पर की और किसी वर्ग के गठन के लिये उसने वर्ग-चेतना को आवश्यक नहीं माना। उसने **वर्ग** (सामान्यीकृत), **प्रतिष्ठा** (वैयक्तिक) तथा **शक्ति** (विरोध के बावजूद किसी लक्ष्य को प्राप्त करने की मनुष्य की इच्छा या क्षमता) में अंतर किया किंतु यह भी माना कि इन तीनों सामाजिक कोटियों में **अभिसरण** (एकबिंदुमुखी) होने की प्रवृत्ति भी होती है। **ऐमिले डरर्वीम**, **डेविस**, **टैल्कॉट पार्सन्स** और **रॉबर्ट मेर्टन** आदि प्रकार्यवादी विचारकों को सामाजिक स्तरीकरण में बहुत

आशा दिखाई दी क्योंकि इसके द्वारा वर्तमान जटिल समाज में सदस्यों (व्यक्तियों) को आगे बढ़ने के लिये आवश्यक पदों, भूमिकाओं और लक्ष्यों को प्राप्त करने के अवसर प्रदान किए जाते हैं। भूमिकाएँ वैयक्तिक स्वत्वों पर आधारित होती हैं, गुण (या विशेषताएँ) जन्मजात होते हैं तथा निष्पादन, सेवाओं (या कार्यों) पर आधारित होते हैं। वे समाज में नैतिक चेतना तथा विनियम द्वारा समर्थित एकीकृत व्यक्तित्व एवं सामाजिक एकात्मता पर ज़ोर देते हैं। उनके लिये इस प्रकार का स्थायित्व लाने वाले अभिकर्त्ता, नैतिक चेतना, धर्म तथा नियम एवं विनियम होते हैं।

9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Beteille A., 1969: *Caste, Class and Power* : *Changing Patterns of Classification in Tanjore Village*, Bombay, Oxford University Press.

Giddens A., 1979: *Central Problems in Social Theory : Action, Structure and Contradiction in Sociul Analysis,* London, Macmillan.

Sharma *K.L., 1997: Social Stratification in India, Issues und Themes*, New Delhi, Sage

Turner J., 1984: *Societal Stratification* : *A Theoritical Analysis*, New Yorlc, Columbia University Press.

9.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) सामाजिक संरचना एक ऐसी व्यवस्था है जहाँ सामाजिक जीवन के तत्वों को परस्पर संयोजित किया जाता है। वे स्थायी एवं संगत होते हैं।

2) क।

बोध प्रश्न 2

1) प्रकार्यवादियों या सरंचनात्मक प्रकार्यवादियों के अनुसार, सामाजिक संरचनाएँ, नागरिकों/सदस्यों की वैयक्तिक भूमिकाओं से अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। वे किसी सामाजिक संरचना के मानकीकृत व्यवहार तथा नियमों पर अधिक ज़ोर देते हैं और किसी सामाजिक संरचना को एकजुट रखने की चिंता अधिक करते हैं। उनके मत से सामाजिक तथ्यों की छानबीन की जानी चाहिए। उनके मत में वैयक्तिक कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों पर विशेष बल दिया जाता है। अतः (समाज की) विद्यमान व्यवस्था को बनाए रखना उनका प्रमुख उद्देश्य होता है।
2) मार्क्सवादियों की समझ में सामाजिक वर्ग, उत्पादन के साधनों एवं संपूर्ण सामाजिक उत्पादन के साथ, सामाजिक अभिकर्त्ताओं के (आर्थिक) संबंधों पर आधारित होते हैं। राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैधानिक और सैद्धान्तिक क्षेत्र, आर्थिक आधार पर एक ऊपरी ढाँचा खड़ा करते हैं। वर्ग-संघर्ष या राजनीतिक संघर्ष को वे वर्ग-रचना का निर्धारक मानते हैं।

बोध प्रश्न 3

1) ग
2) औद्योगिक समाज में मूल्यों के एक समुच्चय के पालन तथा श्रम के विभाजन पर ज़ोर दिया जाता है जिससे व्यक्ति उसके प्रति विद्रोही हो उठता है। एकीकृत के व्यक्तित्व के विकास के लिये एक स्थायी समाज की आवश्यकता होती है। ऐसा समाज केवल तभी संभव हैं जब नैतिक सहमति हो तथा मानकों का निर्वाह किया जाए या इस क्रम को उलट कर कहा जाए।